

एन. के. प्रसाद

बनाम

भारत सरकार और अन्य

12 अप्रैल, 2004

[वी. एन. खरे, सीजे, एस. बी. सिन्हा और एस. एच. कपाडिया, जे. जे.]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 226 और 136-जनहित याचिका (पीआईएल)-न्यायालय प्रक्रिया का दुरुपयोग -केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क आयुक्त की कार्यप्रणाली में गड़बड़ी का आरोप लगाते हुए जनहित याचिका के माध्यम से उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका -उच्च न्यायालय ने पाया कि रिट याचिका एक व्यक्ति द्वारा अपने स्थानांतरण से बचने के लिए एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य से तैयार की गई थी -उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को बिना किसी आधार के पाया और याचिकाकर्ता को कड़ी चेतावनी देते हुए इसे खारिज कर दिया -उच्च न्यायालय ने न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग के लिए उक्त व्यक्ति पर अनुकरणीय जुर्माना भी लगाया। यथार्थतः -यह प्रतिपादित किया गया कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें उक्त व्यक्ति के पक्ष में उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप की मांग की जाती है, यह एक ऐसा मामला है जिसमें जनहित याचिका के मंच का दुरुपयोग किया गया है।

अनुच्छेद 136-विशेष अनुमति-पी. आई. एल. का मंच-आयाेजन का दुरुपयोग: किसी दिए गए मामले में, जिसमें जनहित याचिका के मंच का दुरुपयोग किया गया हो, सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है।

प्रशासनिक कानून:

प्राकृतिक न्याय-सुनवाई के अवसर का सिद्धांत \_ गैर-अनुदान का प्रभाव-प्रतिपादित: नोटिस के बावजूद, यदि कोई पक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है तो उसे बाद के चरण में यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था।

अपीलार्थी उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका (पी. आई. एल.) के माध्यम से दायर रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 8 था जिसमें केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क आयुक्त की कार्यप्रणाली में गड़बड़ी का आरोप लगाया गया था। उच्च न्यायालय ने पाया कि रिट याचिका अपीलार्थी द्वारा अपीलार्थी के स्थानांतरण के आदेश से बचने के लिए एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य के साथ तैयार की गई थी। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को बिना किसी आधार के पाया और याचिकाकर्ता को कड़ी चेतावनी देकर उसे खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को पी. आई. एल. के नाम पर न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग का भी दोषी पाया

और अपीलार्थी पर अनुकरणीय व्यय अधिरोपित किया, इस प्रकार अपील खारिज की गई।

अपीलार्थी की ओर से, यह तर्क दिया गया कि आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सका क्योंकि अपीलार्थी को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था।

याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने कहा,

अभीनिर्धारित: 1.1. उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिका का अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के आधार पर निस्तारण किया गया। सामग्री में न केवल पार्टियों और अपीलकर्ता के हलफनामे शामिल थे बल्कि रिट याचिकाकर्ता के शपथयुक्त बयान भी शामिल थे। [1189 -ए-बी]

1.2. उच्च न्यायालय का निष्कर्ष इस आशय का है कि अपीलार्थी पूरे प्रकरण का कर्ताधर्ता था और उसने अपने स्थानांतरण के आदेश पर रोक लगाने के उद्देश्य से पूरे खेल को तैयार किया था, इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। [1188 -एच; 1189-ए]

2. इस मामले में जनहित याचिका मंच (पी. आई. एल.) का दुरुपयोग किया गया। [1193 -ए]

*अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2003) एयर एससीडब्ल्यू 6105 और डॉ. बी. सिंह बनाम भारत संघ, (2004) ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू, 1494, पर निर्भर था।*

3.1. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को बंधन सूत्र में नहीं डाला जा सकता। इसका अनुप्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यदि कोई पक्ष उचित सूचना मिलने के बाद उपस्थित नहीं होने का विकल्प चुनता है, तो उसे बाद के चरण में यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। [1189 -एच; 1190-ए]

*सोहन लाल गुसा बनाम आशा देवी गुसा*, [2003] 7 एस. सी. सी. 492, पर निर्भर था।

3.2. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को बहुत आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। [1190 -सी]

4. यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें इस न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग अपीलार्थी के पक्ष में करना चाहिए। यह सामान्य बात है कि किसी मामले में, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है। [1190 -डी]

*चंद्र सिंह बनाम पंजाब राज्य*, [2003] 6 एस. सी. सी. 545 और 1180 और *पंजाब राज्य बनाम सविंदरजीत कौर*, जे. टी. (2004) 3 एससी 470, *गुरुवायूर देवस्वमप्रबंध समिति बनाम सी. के. राजन*, [2003] 7 एस. सी. सी. 546, *अध्यक्ष और एम. डी. बी. पी. एल. लिड बनाम एस.*

पी. गुरुराजा, [2003] 8 एस. सी. सी. 567 और ओंकारलाल बजाज बनाम भारत संघ, [2003] 2 एस. सी. सी. 673, पर निर्भर था।

व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स के पंजीयक, [1998] 8 एस. सी. सी. 1, महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम परितोष भुपेश कुमारशेठ, ए. आई. आर. (1984) एस. सी. 1543, ब्रॉमली लंदन बरो काउंसिल बनाम ग्रेटर लंदन काउंसिल, (1983) 1 एसी 768, इंटरनेशनल ट्रांसपोर्ट रोथ जीएमबीएच बनाम गृह विभाग के लिए राज्य सचिव, (2002) 3 डब्ल्यूएलआर 344 और एडम्स बनाम लॉर्ड एडवोकेट, (कोर्ट ऑफ सेशन, टाइम्स, 8 अगस्त 2002), उद्धृत किया गया।

सिविल अपीलिय न्यायनिर्णय: सिविल अपील सं. 3137/1999

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के 1997 के डब्ल्यू. पी. संख्या 6240 में निर्णय एवं आदेश दिनांक 6.7.98 से।

अपीलार्थी की ओर से ए. शरण, अमित कुमार और एस. चंद्र शेखर।

उत्तरदाताओं की ओर से अनूप जी. चौधरी, सी. वी. एस. राव, बी. के. प्रसाद, ए. एस. भास्मे और पी. परमेस्वरन।

न्यायालय का निर्णय एस. बी. सिन्हा, जे. के द्वारा दिया गया था

अपीलार्थी वर्ष 1997 के लोकहित मुकदमा सं. 6240 में प्रत्यर्थी संख्या 8 था जिसका निपटारा वर्ष 1997 के जनहित याचिका सं. 5717 और वर्ष 1997 का अवमानना मामला सं. 779 के साथ किया गया था।

इसमें अपीलार्थी ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा उपरोक्त मामलों में दिनांक 6 जुलाई, 1998 को पारित विवादित निर्णय की शुद्धता या अन्यथा पर सवाल नहीं उठाया है, लेकिन केवल उसमें की गई कुछ टिप्पणियों के साथ-साथ लगायी गई रु 20,000 कोस्ट राशि के संबंध में सवाल उठाया गया है। इन दोनों जनहित याचिकाओं में से एक को बी. किस्टैया द्वारा दायर किया गया था, जिन्हें विधान सभा का पूर्व सदस्य कहा जाता था और वर्ष 1997 की रिट याचिका संख्या 6240 को दिगुमर्ठी प्रेमचंद द्वारा दायर किया गया था, जिन्हें एक पत्रकार कहा जाता है। उक्त कथित जनहित याचिकाओं में केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त की कार्यप्रणाली में गड़बड़ी के परिणामस्वरूप हुये कई करोड़ रुपये का नुकसान और इसमें अपीलार्थी की अध्यक्षता वाले विशेष जांच दल को कथित रूप से नष्ट करने पर भी सवाल उठाए गए थे।

रिट याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि उक्त विशेष जांच दल आयुक्त-1 केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क, हैदराबाद आयुक्तालय द्वारा केवल बेईमान व्यापारियों की मदद करने और उन्हें उत्पाद शुल्क की चोरी से संबंधित मामले से बचाने के उद्देश्य से ध्वस्त किया गया था। अपीलार्थी

शुरू में उसमें एक पक्षकार नहीं था, लेकिन इसके बावजूद उसके और अन्य लोगों के खिलाफ स्थापना आदेश (जी. ओ.) नम्बर 43/97 दिनांकित 10.03.1997 से स्थानांतरण आदेश पारित किया गया जिसपर उक्त रिट याचिका में पर सवाल उठाया गया था। वर्ष 1997 की रिट याचिका संख्या 5717 दाखिल करने के लिए कार्रवाई का कारण भी दिनांक 10.3.1997 को उक्त स्थानान्तरण आदेश का जारी होना कहा गया था। उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने आदेश दिनांक 21.03.1997 द्वारा अपीलार्थी(हालांकि तब वह एक पक्षकार नहीं था) को निर्देशित किया कि वह उसके अधीन किसी भी लंबित मामले जिसकी जांच चल रही थी या चल रही है में कोई भी रिकॉर्ड एम. वी. एस. चौधरी को 26.03.1997 तक न सौंपे।

प्रत्यर्थियों को अतिरिक्त हलफनामे पर या उसके आधार पर भरोसा करने के लिए कहा गया था तथा उच्च न्यायालय द्वारा अपने जवाबी-शपथ पत्र दाखिल करने और विशेष जांच दल की स्थापना और इसके विघटन से संबंधित अभिलेख प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया गया। हालाँकि, रिट याचिकाकर्ता ने अपने वकील को रिट याचिका वापस लेने का निर्देश देते हुए कहा:

"हालाँकि, मेरी अंतरात्मा मुझे इस रिट याचिका में आगे बढ़ने की अनुमति नहीं देती है। मैं इस मामले के

प्रभाव को लेकर भी अनिश्चित हूं और मैं अपने व्यक्तिगत कारणों से विवश हूं, और अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए माननीय न्यायालय से रिट याचिका वापस लेने की अनुमति मांगता हूं।"

जब उक्त मामला लंबित था, तो एक अन्य रिट याचिका जिसे वर्ष 1997 के डब्ल्यू. पी. सं. 6240 रूप में चिह्नित किया गया, दिगुमर्थी प्रेमचंद द्वारा दायर किया गया था, जिसमें एक पैराग्राफ को छोड़कर किए गए अभिकथन वर्ष 1997 की सं. 5717 वाली रिट याचिका में निहित शब्दों के समान थे। उक्त रिट याचिका में भी अपीलार्थी को एक पक्षकार के रूप में शामिल किया गया था और उसमें मुख्य कारण अपीलार्थी को स्थानांतरित करने की उक्त कार्यवाही के खिलाफ निर्देशित किया गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि महानिदेशक, एन. ए. सी. ई. एन. और मुख्य आयुक्त, हैदराबाद ने दिनांक 08.05.1997 के एक आदेश द्वारा निर्देश दिया कि अपीलार्थी को हैदराबाद आयुक्तालय की सूची में वापस ले लिया जाना चाहिए और इसके अलावा मामलों को जांच के लिए सौंप दिया जाना चाहिए। उसकी अनुपस्थिति की अवधि को कैसे नियमित किया जा सकता है, इसकी जांच करने के लिए एक और निर्देश दिया गया था। रिट



याचिकाकर्ता ने उक्त कार्यवाही के कार्यान्वयन के लिए दिनांक 22.5.1997 पर एक आवेदन दायर किया जिसे 1997 के WPMP (SR) संख्या 55758 के रूप में चिह्नित किया गया था। आश्चर्यजनक रूप से, कथित आवेदन को कथित रूप से आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के आदेश के तहत जो स्वीकार्य रूप से गलत पाया गया से एक डिवीजन बेंच के समक्ष हाउस मोशन के लिए रखने का निर्देश दिया गया था। अपीलार्थी ने उसी दिन यहाँ दो याचिकाएँ दायर कीं, एक, उसे उत्तरदाताओं में से एक के रूप में शामिल करने के लिए और दूसरी, मुख्य आयुक्त, हैदराबाद द्वारा दिनांक 08.05.1997 जारी की गई उक्त कार्यवाही को प्रभावी बनाने के लिए। माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश के बिना उक्त आवेदनों को प्राप्त नहीं करना था, इस तथ्य के बावजूद उच्च न्यायालय रजिस्ट्री ने वही गलत आधार पर किया गया था कि उस ओर से मुख्य न्यायाधीश द्वारा एक निर्देश जारी किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि रिट याचिकाकर्ता ने पंजीयक (न्यायिक) को सूचित किया कि वह हाउस मोशन के लिए जोर नहीं देंगे क्योंकि उनके वकील उपलब्ध नहीं होंगे, लेकिन मुख्य न्यायाधीश द्वारा पारित कथित आदेश को ध्यान में रखते हुए, एक पीठ इस संबंध में गठित की गई जबकि मुख्य न्यायाधीश द्वारा कोई निर्देश जारी नहीं किया गया था। यह भी स्वीकार किया गया है कि जहां से अपीलकर्ताओं द्वारा आवेदन दायर किया गया था उक्त आवेदनों को क्रमांकित

कर खंड पीठ के समक्ष रखने बाबत् भी कोई निर्देश भी जारी नहीं किया गया था।

रजिस्ट्री ने अदालत के समक्ष कई रिपोर्ट प्रस्तुत की जैसा करने के लिए कहा गया, जिससे पता चलता है कि रजिस्ट्री के कुछ अधिकारियों के साथ मिलीभगत से अदालत में धोखाधड़ी कैसे की गई थी। उक्त रिपोर्टों के आधार पर दिगुमर्थी प्रेमचंद के खिलाफ अवमानना की कार्यवाही शुरू की गई थी, लेकिन चूंकि रिट याचिकाकर्ता नोटिस की तामील से बच रहा था और क्योंकि रिट याचिकाकर्ता का कोई सही पता प्रस्तुत नहीं किया गया था इसलिए न केवल गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था बल्कि सी. बी. आई. को निम्नलिखित मुद्दों की विस्तृत जांच/अनुसंधान करने के लिए भी कहा गया था:

"(क) क्या दिगुमर्थी प्रेमचंद नाम का कोई व्यक्ति है, पत्रकार, आर/ओ।नारायणगुडा और यदि ऐसा व्यक्ति उपलब्ध है, तो इस न्यायालय के समक्ष उसे 19-09-1997 पर या उससे पहले पेश करें, (ख) यदि दिगुमर्थी प्रेमचंद जो छठा प्रतिवादी है नाम का कोई व्यक्ति नहीं है तो यह जाँच करे और पता लगाए कि यह रिट याचिका किन परिस्थितियों में

अस्तित्व में आई और इसको दाखिल करने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति कौन है।"

मामले की जांच करने के बाद सी. बी. आई. ने उच्च न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष 19.9.1997 को एक रिपोर्ट दायर की थी। इसके बाद अपीलार्थी 17.10.1997 पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ। सी. बी. आई. ने एक अंतिम रिपोर्ट जिसमें कहा गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 199, 200, 201, 416, 465 और 471 और धारा 109 के साथ धारा 120-बी के तहत आरोप पत्र रिट याचिकाकर्ता और इसमें अपीलार्थी और एक एम. काली प्रसाद जो उनके करीबी रिश्तेदार हैं, के खिलाफ दायर किया गया था। उक्त रिपोर्ट के महत्वपूर्ण अंशों को नीचे पढ़ा गया है:

"दिनांक 17.03.1997 को श्री एन. के. प्रसाद की मुलाकात श्री बी. किस्तैया जो एक पूर्व विधानसभा सदस्य थे हुई, जिनका शादनगर के श्री बी. पी. अग्रवाल टेक्सटाइल मिल के मालिक के साथ घनिष्ठ संबंध था, जिनके साथ उक्त श्री एन. के. प्रसाद का भी परिचय था। उसी दिन श्री किस्तैया ने वर्ष 1997 की एक डब्ल्यू. पी. No.5717 सीमा शुल्क और केंद्रीय उत्पाद शुल्क, हैदराबाद में अनियमितताओं का आरोप लगाते हुए दायर की और रिट याचिका के साथ कई दस्तावेज जो एन. के. प्रसाद द्वारा प्रदान किए गए थे भी दायर किए।

उपरोक्त रिट याचिका दायर करने से असंतुष्ट होकर श्री एन. के. प्रसाद ए. 2 ने भी श्री एस. रामचंद्र राव, वरिष्ठ अधिवक्ता और शेषगिरी राव, अधिवक्ता के माध्यम से वर्ष 1997 का एक और डब्ल्यू. पी. No.6240 दायर किया। चूंकि दोनों रिट याचिकाओं का विषय एक ही है, इसलिए माननीय उच्च न्यायालय ने इस मामले को माननीय न्यायमूर्ति वी. भास्कर राव और माननीय न्यायमूर्ति श्री बी. सुदर्शन रेड्डी के समक्ष सुनवाई के लिए रखा।

श्री रामचंद्र राव के लिपिक श्री पद्मनाभम ने बताया कि श्री एन. के. प्रसाद दिनांक 22.05.1997 श्री रामचंद्र राव के कार्यालय में आए और उनसे डी. प्रेमचंद की हाउस मोशन याचिका मांगी और श्री पद्मनाभम ने उन्हें वह बंडल दिखाया जिससे श्री एन. के. प्रसाद ने याचिका निकाली और उसे सूचित किया कि वह डी. प्रेमचंद की हाउस मोशन याचिका ले रहे हैं।

श्री एन. के. प्रसाद, (ए 2) ने उच्च न्यायालय के पंजीयक से इस रिट याचिका को वापस प्राप्त कर लिया क्योंकि पंजीयक द्वारा कुछ आपत्तियां उठाई गई थीं और श्री एन. के. प्रसाद ने भी याचिका की प्राप्ति के प्रतीक के रूप में पंजीयक कार्यालय द्वारा बनाए गए वापसी रजिस्टर में हस्ताक्षर किए थे।

रजिस्टर के साथ-साथ श्री एन. के. प्रसाद के नमूने के हस्ताक्षर जी. ई. क्यू. डी. को भेजे गए हैं, जिन्होंने कहा कि रजिस्टर पर हस्ताक्षर श्री एन. के. प्रसाद से संबंधित हैं।

जांच से पता चला कि सभी फोनोग्राम बशीरबाग में स्थित सार्वजनिक टेलीफोन बूथ संख्या 243 980 और एरामंजिल कॉलोनी में स्थित अन्य पीसीओ टेलीफोन No.332917 से किये गये थे।

जांच से पता चला कि 1997 का डब्ल्यू. पी. No.6240 दाखिल करने के दिन दिनांक 26.03.1997 को श्री काली प्रसाद को श्री एन. के. प्रमदा और श्री बी. पी. अग्रवाल द्वारा श्री एस. रामचंद्र राव के कार्यालय ले जाया गया था। जाँच में यह भी पता चला कि दिनांक 26.03.1997 को श्री डी. प्रेमचंद श्रीकाकुलम में मौजूद थे और वे न तो हैदराबाद आए हैं और न ही उन्होंने 1997 के डब्ल्यू. पी. No.6240 के साथ संलग्न शपथ पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं।

जी. ई. क्यू. डी. ने राय दी की 1997 के डब्ल्यू. पी. No.6240 पर हस्ताक्षर श्री डी. प्रेमचंद का नहीं था। लेकिन श्री डी. प्रेमचंद ने धोखाधड़ी और बेईमान इरादे से माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष 7-11-1997 पर यह कहते हुए एक हलफनामा दायर किया कि 1997 के डब्ल्यू. पी. No.6240 के साथ संलग्न शपथ पत्र पर उन्होंने स्वयं हस्ताक्षर किए हैं और याचिका दायर की।

श्री एस. रामचंद्र राव, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री शेषगिरी राव, अधिवक्ता जिन्होंने 1997 का डब्ल्यू. पी. No.6240 दायर किया था ने भी अपने धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत II MM (महानगर मजिस्ट्रेट -II) हैदराबाद के समक्ष दर्ज किये गये बयानों में कहा है कि व्यक्ति श्री डी. प्रेमचंद जिन्होंने माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष 19-9-1997 को आत्मसमर्पण किया था वह व्यक्ति नहीं था जो श्री एन. के. प्रसाद के साथ आया था और जिसने 26-3-1997 को वर्ष 1997 की WP No.6240 पर हस्ताक्षर किए।

श्री बी. किस्टैया पूर्व विधानसभा सदस्य, शादनगर के 1997 के डब्ल्यू. पी. No.5717 के साथ दाखिल किया गया दस्तावेज की आपूर्ति श्री एन. के. प्रसाद ने की है का कथन श्री के. आर. प्रभाकर राव जो श्री बी. किस्टैया के वकील हैं ने किया, श्री बी. किस्टैया ने माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष यह भी कथन किया कि श्री एन. के. प्रसाद ने उनसे याचिका वापस नहीं लेने का अनुरोध किया।

उपरोक्त कृत्यों से सभी अभियुक्त आपराधिक साजिश में शामिल हो गए और धोखाधड़ी से 1997 का डब्ल्यू. पी. No.6240 दायर किया और जिस प्रक्रिया में ए3 ने ए 2 की सक्रिय मिलीभगत के तहत ए1 का प्रतिरूपण किया और इस तरह उच्च न्यायपालिका के साथ धोखाधड़ी की। ए1 ने आंध्र प्रदेश के माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 07-11-

1997 को शपथ पत्र पेश कर गलत कथन किया कि उसने स्वयं ने वर्ष 1997 का डब्ल्यू. पी. No.6240 दाखिल किया है।

इस प्रकार, तीनों आरोपियों यानी A 1 से A3 तक ने 199, 200, 201, 419, 465 सपठित धारा 120-बी और 471 भादसं और धारा 109 भादसं के तहत दंडनीय अपराध किया।

अतः प्रार्थना है कि माननीय न्यायालय आरोपियों के खिलाफ संज्ञान ले मामला दर्ज करें और उन पर कानून के अनुसार कार्रवाई की जावे।

यह आरोप पत्र है।"

उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 19.9.1997 के एक आदेश द्वारा भी सी. बी. आई. को इस प्रश्न की जाँच करने के लिए निर्देश दिया गया:

"(1) क्या याचिकाकर्ता स्वयं को इस रिट याचिका को दायर करने के उद्देश्य के लिए आवश्यक जानकारी मिली थी और यदि ऐसा है, तो वे व्यक्ति कौन हैं जिनसे याचिकाकर्ता ने जानकारी एकत्र की थी। इसके बारे में पता लगाना उचित और आवश्यक है कि (2) कैसे और किस आधार पर अभिकथन रिट याचिका के समर्थन में दायर हलफनामे में किया जाता है और शपथ पत्र में अभिकथनों को बनाने या निर्माण के लिए जिम्मेदार व्यक्ति कौन है।"

यह पता लगाने के लिए एक निर्देश भी जारी किया गया कि किन परिस्थितियों में रिट याचिकाकर्ता ने रिट याचिका को वापस लेने का प्रस्ताव दिया और साथ ही यह भी कि रिट याचिकाकर्ता द्वारा वापस लेने का पत्र प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति कौन थे। सी. बी. आई. ने अपनी रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ यह राय दी कि अपीलकर्ता पर्दे के पीछे काम करने वाला व्यक्ति था। दिलचस्प बात यह है कि उक्त जांच के दौरान अपीलार्थी का पता नहीं चल सका। उपरोक्त बी. किस्तैया (वर्ष 1997 के डब्ल्यू. पी. No.6240 में रिट याचिकाकर्ता) ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक गंभीर बयान दिया जिसमें उन्होंने अपीलार्थी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में नामित किया जो अधिवक्ता के माध्यम से दायर रिट याचिका प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार था, हालांकि वह उसे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता था। उन्होंने आगे आरोप लगाया कि रिट याचिका दायर करने के लिए आवश्यक दस्तावेज अपीलार्थी द्वारा विद्वान अधिवक्ता को सौंप दिए गए हैं।

उच्च न्यायालय द्वारा दलीलों और अन्य सामग्रियों के विश्लेषण से पहले कि यह देखा गया:

"हमारे समक्ष दायर अभिवचनों और सी. बी. आई. के विभिन्न प्रतिवेदनों और 1977 की डब्ल्यू. पी. No.5717 में याचिकाकर्ता का शपथ बयान का विश्लेषण एक अप्रतिरोध्य निष्कर्ष की ओर ले जाएगा कि ये दोनों



रिट याचिकाए 8 वें प्रत्यर्थी द्वारा एक सामान्य स्थानान्तरण आदेश दिनांकित 8-5-1997 से बचने के लिए एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य से निर्मित की गई तथा अस्तित्व में लाई गई। यह 8 वां प्रतिवादी है जिसने पर्दे के पीछे से कार्रवाई की है उत्तरदाताओं के खिलाफ लापरवाह और निराधार आरापे लगाने वाली रिट दायर करने के लिए याचिकाकर्ता को तैयार किया था। यह सब केवल सामान्य स्थानान्तरण आदेश से बचने के लिए किया गया है। आठवां प्रतिवादी किस हद तक नीचे गिर सकता है, यह अदालत में दायर उनके स्वयं के हलफनामे की अंतर्वस्तु से पर्याप्त प्रदर्शित होता है। सी. बी. आई. की दिनांक 17-10-1997 की रिपोर्ट उनके एक जवाबी-एफिडेविट में 8 वें प्रतिवादी ने अन्य बातों के साथ कहा है कि "जिस दिन श्री बी. पी. अग्रवाल ने मुझे वकील से मिलवाया लेकिन मैंने बाद में श्री एस.रामचंद्र राव से खुद सलाह ली कि क्या मुझे CAT या उच्च न्यायालय में दायर करनी चाहिए। उनके निर्देश के अनुसार, मैंने उन्हें प्रासंगिक कागजात दिये थे जिनको उन्होंने कहा कि वे जांच करेंगे और मुझे तदनुसार सलाह देंगे। हालांकि, मेरी जानकारी या प्राधिकरण के बिना उन्होंने जनहित याचिका दायर करने के लिए दस्तावेजों का उपयोग किया। मुझे बहुत बाद में पता चलता है कि माननीय उच्च न्यायालय ने बी. किस्टैया द्वारा दायर जनहित याचिका पर कुछ निर्देश जारी किये हैं, मैंने किसी भी समय मेरी ओर से याचिका दायर करने के लिए किसी को भी

प्रभावित या प्रेरित नहीं किया। आगे यह कथन किया है कि "एक वरिष्ठ अधिवक्ता के रूप में श्री एस.

रामचंद्र राव की भूमिका इस संदर्भ में बहुत संदिग्ध दिखती हैं। ये अलग है कि मेरी अपनी याचिका दाखिल करने के लिए मेरे द्वारा उसे दिए गए दस्तावेजों का सद्भावपूर्वक दुरुपयोग किया जा रहा है। यह मुवक्किल की गोपनीयता और हित के उल्लंघन का एक स्पष्ट मामला है।" अब यह स्पष्ट है कि यह 8 वां प्रत्यर्थी है जिसने अदालत में इन रिट याचिकाओं में दायर पूरी सामग्री को कागजात सामग्री के रूप में उपलब्ध कराया। जाहिर है, 8 वें प्रत्यर्थी द्वारा आपूर्ति की गई सामग्री के आधार पर रिट याचिका का मसौदा तैयार किया गया है। यह पूरी तरह से एक अलग मामला है कि क्या हलफनामा याचिकाकर्ता या किसी और द्वारा हस्ताक्षरित है उदाहरण के तौर पर उत्तरदाता सं. 8। लेकिन जड़ वही सामग्री बने हुए हैं जो 8 वें प्रतिवादी द्वारा स्वीकार्य रूप से उपलब्ध कराया गया, निस्संदेह वह पूरे नाटक में कर्ताधर्ता है और वह पर्दे के पीछे से संचालन कर रहा है।"

उच्च न्यायालय के समक्ष श्री ई. शेषगिरी राव, अधिवक्ता जिन्होंने याचिका दायर की थी रिट याचिका ने एक हलफनामे की पुष्टि की जिसमें यह पता चला कि रिट याचिका श्री एस. रामचंद्र राव एक वरिष्ठ अधिवक्ता के कार्यालय से दायर की गई थी, जो कथित रूप से इसमें अपीलार्थी श्री बी. पी. अग्रवाल, और कुछ अन्य व्यक्तियों के निर्देश पर था।

उपरोक्त दोनों रिट याचिकाओं को दायर करने का तरीका जिसे जनहित याचिकाओं की प्रकृति में कहा जाता है में उच्च न्यायालय ने

न्यायालय की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग देखा। उच्च न्यायालय ने भी मामले की योग्यता पर गौर किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि रिट याचिकाएं अपीलार्थी के कहने पर दायर की गई थीं। उच्च न्यायालय ने उक्त रिट याचिकाओं को बिना किसी योग्यता के पाते हुए कहा कि रिट याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकती है। उच्च न्यायालय ने वकीलों की भूमिका भी पर अप्रसन्नता व्यक्त की। हालांकि उच्च न्यायालय ने देखा कि 1997 की रिट याचिका संख्या 5717 में रिट याचिकाकर्ता व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ और रिट याचिका को वापस लेना चाहता था, लेकिन अपीलार्थी के कहने पर रिट याचिका दायर करने के मामले में उसे अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया। हालाँकि, इसमें एक उदार दृष्टिकोण अपनाया और उनके खिलाफ बिना किसी कोस्ट के रिट याचिका को खारिज कर दिया। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने उन्हें भविष्य में सावधान रहने और न्यायिक प्रक्रिया के साथ कोई खेल नहीं खेलने की कड़ी चेतावनी दी।

जहाँ तक 1997 की रिट याचिका संख्या 6240 का संबंध है, उच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया:

"जहाँ तक 1997 के डब्ल्यू. पी. No.6240 का संबंध है, हम पहले ही देख चुके हैं कि याचिकाकर्ता के साथ-साथ 8 वां प्रतिवादी भी जनहित याचिका के नाम पर न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के दोषी हैं।

उन्होंने जनहित याचिका के मंच को नग्न दुरूपयोग में डाल दिया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनाशकारी अभियान में समाज के वंचित वर्गों की सेवा के लिए एक महान उद्देश्य के साथ हथियार का आविष्कार किया गया। उनके आचरण से न्याय की धाराएँ प्रदूषित हुई हैं।

हम, उन परिस्थितियों में, रिट याचिका खारिज करना उचित समझते हैं -1997 की रिट याचिका No.6240 अनुकरणीय लागतों मात्राबद्ध 25,000 रुपये (केवल पच्चीस हजार रुपये) में से 5000 रुपये (पांच हजार रुपये मात्र) का भुगतान याचिकाकर्ता दिगुमर्ठी प्रेमचंद द्वारा किया जायेगा और शेष राशि से रु. 20,000 (केवल बीस हजार रुपये) का भुगतान प्रतिवादी संख्या 8, एन. के. प्रसाद किया जाएगा। याचिकाकर्ता और 8 वें प्रतिवादी द्वारा राशि आंध्र प्रदेश राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण में जमा करवाई जावेगी।"

अवमानना कार्यवाही में रिट याचिकाकर्ता को दोषी पाया गया और रिट याचिकाकर्ता को अदालत उठने तक की सजा दी गई। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने आपराधिक मामले की लंबितता को ध्यान में रखते हुए देखा:

"हालाँकि, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि हमने अभियोजन और सीबीआई द्वारा याचिकाकर्ता साथ ही 8 वें प्रतिवादी और एक काली प्रसाद के खिलाफ दायर आरोप पत्र की गुणावगुण के संबंध में कोई भी राय व्यक्त नहीं की है। हमारे द्वारा इस आदेश में किए गए किसी भी अवलोकन से प्रभावित हुए

बिना विचारण न्यायालय विचारण में आगे कार्यवाही करेगा। हमने याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या आठ के खिलाफ लगाए गए आरोप के किसी भी पहलु के गुणावगुण के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं की है। सी. बी. आई. की रिपोर्टों और आरोप-पत्र का उल्लेख करते हुए इस न्यायालय द्वारा यदि कोई टिप्पणियां की गई है तो वह इन रिट याचिकाओं और अवमानना के मामले के निपटारे के उद्देश्य तक सीमित है। निचली अदालत इस मामले में किए गए किसी भी अवलोकन से प्रभावित हुए बिना आपराधिक मामले का निपटारा करेगी।"

अपीलार्थी की ओर से श्री अमरेंद्र शरण, विद्वान वरिष्ठ वकील की दलीलें दो भाग में हैं। सबसे पहले उन्होंने हमारा ध्यान पहली बात की ओर खींचा उनके द्वारा एक कथित प्रथम सूचना रिपोर्ट एक टी. एन. राव, डीवाई. एस. पी. सीबीआई हैदराबाद के खिलाफ दर्ज की गई और आग्रह किया कि जैसा कि उक्त अधिकारी खुद रिश्तत मांगने के आपराधिक आरोप का सामना कर रहे, उच्च न्यायालय में दायर उनकी रिपोर्ट पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए था। विद्वान वकील ने दूसरा आग्रह यह किया कि हालांकि अपीलार्थी को एक पक्ष के रूप में शामिल किया गया था, उसे सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया इसलिए विवादित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है।

श्री अनूप जी. चौधरी, विद्वान वरिष्ठ वकील, जो प्रत्यर्थियों की ओर से पेश हुए ने दूसरी तरफ कहा कि अपीलार्थी द्वारा टिप्पणियों को हटाने के लिए स्वयं उच्च न्यायालय का रुख किया जा सकता था। यह बताया गया कि अपीलार्थी ने सी. बी. आई. जांच में भाग लिया, छुट्टी को नियमित करने के लिए एक आवेदन दायर किया और केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका दायर करने में उसकी भागीदारी रिकॉर्ड से सामने स्पष्ट है।

रिट याचिकाकर्ता को विशेष अनुमति आवेदन में प्रतिवादी संख्या 8 के रूप में प्रस्तुत किया गया था ने एक हलफनामा दायर किया है। वह अपने हलफनामे में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से इनकार या विवाद नहीं करते हैं। वह यह नहीं कहते हैं कि रिट याचिका अपीलार्थी के कहने पर दायर नहीं की गई थी।

यह विवाद में नहीं है कि अपीलार्थी रिट याचिका जिसका विषय दिनांक 10.3.1997 को उनके खिलाफ पारित स्थानांतरण का आदेश था और जिसमें उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था के मामले में पक्षकार नहीं था । इस तथ्य से कि उन्होंने उक्त अंतरिम आदेश का लाभ उठाया, इनकार या विवादित नहीं है। यह तथ्य भी स्वीकार किया जाता है कि उसने दो आवेदन, एक लंबित रिट कार्यवाही में खुद को एक पक्ष के रूप में शामिल करने के लिए और दूसरा

मुख्य आयुक्त के दिनांकित 08.05.1997 के आदेश को लागू करने के लिए एक अंतरिम आदेश के लिए दायर किए।

हमें याद होगा कि मूल रिट याचिकाकर्ता ने भी इसी तरह का आवेदन दायर किया था। उच्च न्यायालय न केवल केंद्रीय जांच ब्यूरो की रिपोर्ट के आधार पर, अन्य बातों के साथ-साथ जिसमें श्री एस. रामचंद्र राव, अधिवक्ता के लिपिक के बयान और आवेदन दायर करने और उनसे इसे वापस लेने में उसकी भागीदारी शामिल है, रजिस्ट्री जो रजिस्ट्री द्वारा बनाए गए रिटर्न रजिस्टर से उत्पन्न होती है बल्कि रजिस्ट्रार (न्यायिक) द्वारा समय-समय पर उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत विस्तृत रिपोर्ट के साथ-साथ अन्य शपथ पत्र, शपथयुक्त बयान और अन्य सामग्री भी जो रिकॉर्ड में लाई गई के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचा।

उच्च न्यायालय का निष्कर्ष इस आशय का है कि *प्रथम दृष्टया* अपीलार्थी इस पूरे प्रकरण का कर्ताधर्ता था और उसके स्थानान्तरण के आदेश पर रोक लगाने के उद्देश्य से पूरे खेल को तैयार किया गया था, हम इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिका और अवमानना कार्यवाही का निपटान अभिलेख पर सामग्री के आधार पर किया गया था। सामग्री में न केवल पक्षकारों और अपीलार्थी के शपथ-पत्र शामिल थे, बल्कि रिट याचिकाकर्ता और रिट याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता के



शपथयुक्त बयान भी शामिल थे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि रिट याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी स्पष्ट रूप से कहा कि रिट याचिका तैयार/दायर करने के समय अपीलार्थी मौजूद था, उच्च न्यायालय के निष्कर्षों में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती है यदि इस पर निर्भरता रखी गई थी। अपीलार्थी ने 22.5.1997 को रिट आवेदनों में हस्तक्षेप किया था। यह दोहराना होगा कि, उसने एक अंतरिम राहत लेने के लिए एक आवेदन दायर किया। यह विचाराधीन था और इसलिए, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि केंद्रीय जांच ब्यूरो जांच कर रहा था, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है; इसमें अपीलार्थी को इसके बारे में पता होना चाहिए। उनके दो आवेदन भी लंबित थे और संभवतः दबाए गए (क्योंकि यह दिखाने के लिए कि किसी भी समय रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है, उन्होंने इसे वापस लेने का इरादा किया था), और इस प्रकार एक अनुमान लगाया जा सकता है कि वह/उसका वकील पूरी कार्यवाही के प्रभाव पर नजर रख रहा था। इसके बावजूद किसी भी समय अपीलार्थी किसी भी गवाह से जिरह नहीं करना चाहता था। उसने कभी भी यह तथ्य अदालत के ध्यान में नहीं लाया कि डीवाई एस.पी. सी. बी. आई. के खिलाफ कथित रूप से रिश्वत लेने के लिए आपराधिक मामला भी दायर किया गया था। उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही जारी रखने की स्वीकारोक्ति दी। वह दर्शक बनकर बैठ गया। जैसा कि उच्च न्यायालय ने देखा है, कुछ समय तक उसका पता भी नहीं चल सका।

इसके अलावा, वह निम्नलिखित अवधि के दौरान छुट्टी पर दिखाई दिए:

1. 83 दिन EL 3-4-1997 से 24-6-1997 तक।
2. 138 दिन EL 26-6-1997 से 10-11-1997 तक।
3. 15 दिन EL 11-11-1997 से 25-11-1997 तक।
4. 115 दिन आधा-भुगतान छुट्टी 26-11-1997 से 29-4-1998 तक।
5. 32 दिन असाधारण छुट्टी 30-4-1998 से 31-5-1998 तक।”

जैसा कि यहाँ पहले देखा गया है उसने मुख्य आयुक्त हैदराबाद द्वारा अपने दिनांकित 08.05.1997 आदेश में की गई टिप्पणियों के अनुसार उन्हें आगे बढ़ाने के लिए या छुट्टी की उक्त अवधि को नियमित करने के लिए आवेदन दायर किया।

प्राकृतिक न्याय का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि, उन्हें बंधन सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। इसका अनुप्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यह भी तय है कि यदि किसी पक्ष ने उचित सूचना मिलने के बाद उपस्थित नहीं होने का फैसला किया है, तो बाद में उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। इस सवाल के संबंध में *सोहन लाल गुप्ता (मृत) मामला एल. आर. और अन्य बनाम आशा देवी गुप्ता (श्रीमती)*

और अन्य, [2003 ] 7 एस. सी. सी. 492 में इस अदालत की एक पीठ द्वारा विचार किया गया था जिसमें से हम दोनों (वी. एन. खरे, सी. जे. आई. और सिन्हा, जे.) पक्षकार हैं, जिसमें बड़ी संख्या में निर्णयों को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लिया गया था:

"29. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के संबंध में यह सामान्य बात है कि इसे एक बंधन सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। किसी दिए गए मामले में पक्षकार को केवल यही नहीं दिखाना होता है कि उसके पास उचित सूचना नहीं थी जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ लेकिन उसे यह भी दिखाना होता है कि वह गंभीर रूप से पूर्वाग्रह से ग्रसित था।"

प्राकृतिक न्याय का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि उनका बहुत दूर तक विस्तार नहीं किया जाना चाहिए।

किसी भी मामले में, यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां इस न्यायालय को अपीलार्थी के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए। यह सामान्य बात है कि किसी मामले में न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है। (चंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, [2003 ] 6 एस. सी. सी. 545 और पंजाब राज्य और अन्य बनाम सविंदरजीत कौर, जे. टी. (2004) 3 एससी 470 देखें।

गुरुवायूर देवस्वम प्रबंध समिति और अन्य बनाम सी. के. राजन और अन्य, [2003 ] 7 एस. सी. सी. 546 होल्डिंग में न्यायालय द्वारा जनहित याचिका के दायरे को हाल ही में देखा गया है:

".....राज्य को सांविधिक कार्य विधानमण्डल द्वारा सौंपे जाते हैं और न कि अदालतों के द्वारा। न्यायालय को सामान्य रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के बारे में खुद को याद दिलाना चाहिए जो, हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायालय कोई भी परिस्थिति में हस्तक्षेप नहीं करेगा, बल्कि न्यायालय को अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय को स्वयं को आत्मसंयम के नियम के बारे में भी याद दिलाना चाहिए। न्यायालय, जैसा यहाँ पहले इंगित किया गया है, आम तौर पर सांविधिक पदाधिकारी जो कार्यों को ग्रहण करने के लिए अनिच्छुक है यह पहली बार में उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करने की अनुमति देता है।

जब राज्य अपना कर्तव्य पूर्ण करने में विफल रहता है तो अदालत परमादेश द्वारा कदम उठाती है। यह तब भी कदम उठाएगा जब विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाएगा लेकिन ऐसा कानूनी और वैध रूप से नहीं किया गया है। यह पारित आदेशों पर न्यायिक समीक्षा के माध्यम से कदम उठाता है। यद्यपि भारतीय संविधान अनुच्छेद 226 के अधीन वैकल्पिक उपचार का अस्तित्व में लाकर अधिकारिता के प्रयोग करने पर

कोई रोक नहीं है, लेकिन आम तौर पर ऐसा तब तक नहीं करेगा जब तक कि यह नहीं पाया जाता है कि कोई आदेश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना पारित किया गया है या संवैधानिक या वैधानिक प्रावधानों के विरोधाभासी या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना आदेश पारित किया गया है। (*व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स के पंजीयक, मुंबई और अन्य*, [1998 ] 8 एससीसी 1 देखें)

यह मामूली बात है कि केवल इसलिए कि स्वयं न्याय की अदालतों के दरवाजे बंद करने का कोई आधार नहीं हो सकता है, मामलों के बाढ़ के द्वार खोले जाएंगे। अदालतों के दरवाजे खुले रखे जाने चाहिए लेकिन जनहित याचिका की सुनवाई करते समय इसकी जमीनी वास्तविकताओं पर न्यायालय अपनी आंखें बंद नहीं कर सकता।

इस प्रकार, केवल अपवाद को छोड़कर बेशक आत्म-संयम के अभ्यास का पालन किया जाना चाहिए।"

(*महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम परितोष भुपेश कुमारशेठ आदि*, एआईआर (1984) एससी 1543 भी देखें)।

उक्त निर्णय का पालन *अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, बी. पी. एल. लिमिटेड बनाम एस.पी. गुरुराजा एवं अन्य* [2003 ] 8 एस. सी. सी. 567 में किया गया है, जिसमें यह देखा गया था:

"न्यायालय और लोकतंत्र, नागरिकता और अच्छे शासन के सिद्धांत' पर ब्रिटेन में संवैधानिक सुधार में डॉन ओलिवर शीर्षक के तहत पृष्ठ 105 पर कहा गया है:

"तथापि, लोकतंत्र की यह अवधारणा सीमित सरकारी शक्ति के साथ अधिकारों पर आधारित है, और विशेष रूप से लोकतंत्र में अदालतों की भूमिका न्यायाधीशों के लिए और जनता के लिए भी उच्च जोखिम वाली होती है। अदालतें बिना सलाह के लोक प्रशासन में हस्तक्षेप कर सकती हैं। *ब्रोमली लंदन बरो काउंसिल बनाम ग्रेटर लंदन काउंसिल*, (1983) 1 एसी 768, एचएल का मामला एक शानदार उदाहरण है। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने जी. एल. सी. की सस्ते किराए नीति को वैधानिक प्रावधानों के गलत अध्ययन पर आधारित होने के फलस्वरूप रद्द कर दिया, लेकिन उन पर ऐसा करने में परिवहन नीति को गलत समझने का आरोप लगाया गया था। अदालतें नीति और लोक प्रशासन में विशेषज्ञ नहीं हैं -इसलिए जोवेल का कहना है कि अदालतों को उनकी संस्थागत क्षमता से परे कदम नहीं रखना चाहिए (जोवेल, 2000)। इस दृष्टिकोण की स्वीकृति एल. जे. में

अंतर्राष्ट्रीय परिवहन रोथ जी. एम. बी. एच. बनाम गृह विभाग के लिए राज्य के सचिव, (2002) ई. डब्ल्यू. सी. ए. सिविल 158, (2002) 3 डब्ल्यू. एल. आर. 344) और एडम्स में लॉर्ड निमो स्मिथ बनाम लॉर्ड अधिवक्ता (सत्र न्यायालय, टाइम्स, 8 अगस्त 2002) कानून के निर्णयों में परिलक्षित होती है, जिसमें उन क्षेत्रों के बीच अंतर किया गया था जिसकी विषय वस्तु अदालतों की विशेषज्ञता के (उदाहरण के लिए, आपराधिक न्याय, जिसमें व्यक्तियों को सजा देना और हिरासत में रखना शामिल है) और जो निर्णय के लिए लोकतांत्रिक रूप निर्वाचित और उत्तरदायी निकाय अधिक उपयुक्त थे, के भीतर निहित है। यदि अदालतें उनकी संस्थागत क्षमता के क्षेत्र से बाहर कदम रखती हैं तो सरकार संसद से कानून बनवाकर अदालत के अधिकार क्षेत्र को पूरी तरह से हटाने के लिए प्रतिक्रिया दे सकती है। ऐसा कदम कानून के शासन को कमजोर करेगा। सरकार और जनता की राय मंत्रियों के खिलाफ न्यायिक समीक्षा करने वाले न्यायाधीशों की वैधता पर सवाल उठा सकती है और इस प्रकार अदालतों के अधिकार और कानूनी शासन को कमजोर करते हैं।"

एससीसी 673 में यह देखा गया:

"अभिव्यक्ति 'जनहित' या 'शासन में ईमानदारी', को एक बंधन सूत्र में नहीं रखा जा सकता। 'जनहित' अनेक कारकों को अपने में समाहित कर लेता है। यह निर्धारित करने के लिए कोई पुख्ता नियम नहीं हो सकता है कि जनहित क्या है। प्रत्येक मामले में परिस्थितियाँ निर्धारित करेंगी कि क्या सरकारी कार्रवाई जनहित में की गई थी या शासन में ईमानदारी बनाए रखने के लिए की गई।

शासन और उसके लिए गए निर्णय समानता, निष्पक्षता और न्याय के लिए स्पष्ट आदर्श होना चाहिए। कानून के शासन पर आधारित एक सभ्य समाज में शासन का मुख्य सिद्धांत न केवल पारदर्शिता पर आधारित होना चाहिए बल्कि निर्णय ईमानदारी के विचार से प्रेरित था की एक धारणा बनानी चाहिए। सरकार को निहित स्वार्थों की सांठगांठ और भाई-भतीजावाद से ऊपर उठना होगा और बाह्य अलंकरण/उपरी दिखावट से बचना होगा। शासन का कार्य विवेकशीलता एवं निष्पक्षता की कसौटी पर खरा उतरें और मनमानी या मनमौजी हरकतों से बचें। इसलिए, शासन



के सिद्धांत को न्याय, समता और निष्पक्षता की कसौटी पर परखा जाए और यदि निर्णय न्याय, समानता और निष्पक्षता पर आधारित नहीं लिया गया है तो अन्य मामलों को ध्यान में रखते हुए, यद्यपि ऊपरी तौर पर, निर्णय वैध लग सकता है लेकिन वास्तव में, तर्क मूल्यों पर आधारित नहीं हैं लेकिन लोकप्रिय प्रशंसा प्राप्त करने के लिए है, वह निर्णय संचालित करने के लिए अनुमत नहीं किया जा सकता है।"

हम यह देखकर दुखी हैं कि कैसे जनहित याचिका का मंच का दुरुपयोग किया जा रहा है। हाल ही में इस अदालत को इस पर ध्यान भी देने का अवसर मिला। (*अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*, (2003) ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6105 और *डाॅ. बी. सिंह बनाम भारत संघ और अन्य*, (2004) ए.आई.आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1494, देखें)

उपर्युक्त कारणों से, हम इस अपील में कोई योग्यता नहीं पाते हैं, जिसे तदनुसार खारिज किया गया है। कोई जुर्माना नहीं।

वी.एस.एस.

अपील खारिज की गई।

(यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **नीलम मीणा** (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।)